Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

7. प्रकृतिवासी एवं सभ्यवासी : एक मानवशास्त्रीय विश्लेषण

महेंद्र कुमार जायसवाल
शोधार्थी, मानवविज्ञान विभाग
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
mahendrajaiswal712@gmail.com
संपर्क सूत्र- 09554783277

शोध सार

प्रकृति अपने आप में एक सार्वभौमिक वैज्ञानिक व्यवस्था है, जिसमें विज्ञान और धर्म दोनों संयुक्त रूप से समाहित है। प्रकृति की शक्ति और सुकून देने वाली अद्भुद शांति, ऊंचे-ऊंचे पेड़, आईने की तरह शांत ताल, कल-कल करती नदियाँ, सब मिलकर एक नयी मनुष्य से अनछुई दुनिया, वनस्पति और जीव-जंतुओं का अद्भुत संसार स्वर्गमय मालूम होते थे। जनजातीय समूहों के पास पहुँचते ही जैसे हमारे सुदूर पूर्वजों का सरल, आदिम प्रागैतिहासिक काल आँखों के आगे उपस्थित हो गया था। शिकारी, जंगली कंदमूल एकत्रित करने वाले, धनुषधारी, घुमंतू, तर्क-वितर्क से दूर, प्रकृति-पूजक, ओझा और झाड़-फूँक में विश्वास करने वाले लोग। सभ्य संसार से अनछुई, पाषाणकालीन, जादू-टोने में विश्वास करने वाली संस्कृतियाँ, बहुविवाह, खोपड़ी सिकोड़ना यानि आदिम इतिहास की पूर्ववेला का तब पहली बार मुझे इस दुनिया का सच्चा अहसास हुआ। आज हर पहाड़ी, हर नदी और हर जंगल के लिए समझौता हो गया है। आज हम हर स्तर पर व्यापक सामाजिक और पर्यावरणीय मुद्दों पर अपनी चिंता अभिव्यक्त व बात कर रहे है। दुनिया के सबसे पुराने और दिव्य जंगल, प्राकृतिक परिवेश और आदिम समुदाय को नष्ट करने के लिए जो परियोजनाएं शुरू हुई है, उनकी चर्चा भी बड़े सम्मेलनों में भी हो रही है। जबकि लालच के इस अंधी दौड़ के आगे जिसका परिणाम अंत व विनाश है, उनसे सिजदा करके हम दरअसल अपने पर्यावरण की क़ीमत पर दूसरे देशों की अर्थ-व्यवस्था को ही समृद्ध कर रहे है। इससे जंगल, पर्यावरण और वहाँ रहने वाले हजारों आदिवासियों की जिंदगी भी ख़त्म हो जाएगी।

शब्द कुंजी- प्रकृतिवासी, सभ्य मानव, असभ्य, अतीत, वर्तमान, भविष्य, जल, जंगल, जमीन, आदिवासी समाज।

प्रस्तावना

प्राकृतिक आवरण का तात्पर्य प्रकृति की गोद या प्रकृति की क्षत्रछाया से है। मनुष्य के लिए प्राकृतिक अवस्था पहले कैसी थी आज के वर्तमान परिस्थिति की तुलना में प्रकृति का वातावरण कैसा है अर्थात कठिन था या सुगम । मैं इस प्रकृति के आवरण को इसी तरह से समझता व सोचता हूँ कि प्रकृति कि गोद में मनुष्य स्वच्छंद पूर्वक

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

जीवन यापन करता था। वह अवस्था भय और चिंता से पूर्णतः मुक्त थी। उस समय मनुष्य असभ्य जीव था। जो प्रारंभिक सरलता और सुख पूर्ण रीति से अपना जीवन बसर कर रहा था। वह स्वतंत्र, संतुष्ट, आत्मतुष्ट, स्वस्थ्य एवं निर्भय रहता था। उसे न तो साथियों की आवश्यकता थी और न वह समाज के व्यक्तियों को दुख देना चाहता था। वह न तो सही को जानता था और न ही गलत को, वह गुण और अवगुण की सब भावनाओं से अछूता था। बुद्धि एवं विवेक की करतूतों का उसमें अभी अभाव था। इस अवस्था में ऊंच-नीच तथा तेरे-मेरे का अभी कोई भेदभाव नहीं था, और स्वार्थ किस चिड़ियाँ का नाम है, उसे तनिक भी इसका एहसास न था। व्यक्ति स्वयं अपना स्वामी था और वह पूर्ण रूप से अपने आप पर निर्भर रहता था।

यदि उनको भूख लगती तो वह पानी में हाथ डालता और पूँछ फड़फड़ाती रोहू उसके हाथ में आ जाती। वह बिना निशाना साधे एक तीर छोड़ता और जंगल में कुछ कदम चलते है तो उसके तीर का निशाना बनी कोई जंगली मुर्गी या तीतर या बटेर मिल जाता। भोजन की कभी कोई कमी नहीं होती। तब युद्ध नहीं था। नदियाँ मछलियों से और जंगल जानवरों से भरे थे। वह नदी किनारे जाकर सूखी पत्तियों और टहनियों से अपना बिस्तर बनाता और उस पर छप्पर छवाता। धरती के लोग एक साथ रहते थे। सौहार्द और शांति के साथ। मरना मरने जैसा नहीं था। कमजोर करने के बजाए, वह उन्हे सशक्त करता, चले गए लोगों की बुद्धि और बल से उनके वारिसों में और इजाफ़ा करता हुआ। उस आदमी के भीतर जो सबसे अच्छा शिकारी, सबसे अच्छा योद्धा और रिवाजों का पालन करने वाला होता है। तब लालची लोग नहीं थे। धरती के आदमी बलशाली, बुद्धिमान, शांत, सरल और एकजुट थे। वे शांतप्रिय और आक्रोश रहित थे। यह बाद के समय के पहले की बात है।

क्या उनका घने जंगलों का पैदल सफ़र एक सजा थी? नहीं बल्कि एक उत्सव था, सूखे दिनों में मछली पकड़ने या शिकार पर जाने जैसा। वे अपने कुशमा पहने, बटुए लटकाए, तीर-कमान, ज़हर से भरे सींग, नैसर्गिक रंग से भरे खोखले सरकंडे, चाकू, ढ़ोल और बच्चों को पीठ पर बांधने के लिए कपड़ा हमेशा साथ रखते। नवजात शिशु यूँ चलते-चलते ही जन्म लेते और बूढ़े यूँ चलने के दौरान ही मर जाते। तब न युद्ध था न खून-खराबा, सिर्फ़ एक-दूसरे के प्रति आदर भाव था ऐसा बताते है। हमसे कोई भूल हुई है। एक ही जगह पर इतने दिनों तक रुकने से हम भ्रष्ट हो गए है। हमें चलते रहना होगा क्योंकि मनुष्य चलने के लिए बना है, अर्थात चलना उसका स्वभाव है जैसे पक्षियों का उड़ना उनका प्राकृतिक स्वभाव है। पक्षी कभी भी एक जगह स्थायी घर बना कर नहीं रहते। सिर्फ प्रजनन के समय घर बनाते है और बच्चों के पंख आने के बाद वो अपना सुंदर घर छोड़कर चले जाते है। किसी

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

नयी जगह जाकर बसने में जीवन कठिन हो जाता है, सौभाग्य से हम चलना जानते है। हम इतने लंबे समय से चलते चले आ रहे है। हम हर बार एक स्थान से दूसरे स्थान की ओर जाते रहते है। हमारा क्या होता यदि हम उन जैसे होते जो कभी कहीं आते जाते नहीं है। न जाने कहाँ हमारा सफाया हो गया होता। यह न वो समय था जब खूब खाने पीने को था और न ही पेड़ों का रक्त बहाने वाला समय।

विवेचना

जंगल को काटकर जलाने के बाद उन्होने कसावा, मक्का और केले लगाए। वहाँ उग रहे जंगली कपास से वे कुश्मा बुन सकते थे। और तंबाकू के पेड़ों से उठती गंध साँपों को दूर रखेगी। बुलबुल उनके कंधों पर बैठकर चहचहाने लगती, शेर के बच्चे औरतों के स्तनों से दूध पीते थे, प्रसव पीड़ा उठते ही स्त्रियाँ जंगल की ओर भीतर चली जाती और वहाँ से वे स्नान कर, हाथ पैर फेंकते नवजात शिशु को लेकर लौटती जो मानो सूरज उन्हे गरमाने से खुश होकर किलकारी मारता। अपनी जीवन शैली बदलकर उन्होने संसार की लय बिगाड़ डाली, जाने वाली आत्माओं को भी दिग्भ्रमित कर डाला। खुद को मनुष्य होते हुए भी मनुष्य जैसा न पाना कैसा दुखद अनुभव है। स्वर्ग की उनकी कल्पना बहुत सीधी सादी है स्वर्ग यानि वह जगह जहां नदियों में भरपूर मछलियाँ हो और जंगलों में खूब शिकार हो। वे अपने यायावर जीवन को आकाश गंगा में भटकते सितारों से जोड़कर देखते है। पुरुषों की अपनी स्त्रियाँ थी और स्त्रियों के अपने पुरुष। हर तरफ शांति थी और पर्याप्त भोजन। जो जाते थे वो लौट आते थे। उनमें स्वयं मृत्यु का वरण करने का चलन बहुत अधिक है। इसीलिए इन संस्कृतियों को आदर पूर्वक देखा जाना चाहिए है।

सभ्यता का विकास न होने से उसकी आवश्यकताएँ बहुत कम थी और जो थी भी वह प्रकृति के माध्यम से सहज ही पूरी हो जाती थी । वस्तुओं के प्रति लगाव की भावना एवं व्यक्तिगत संपत्ति की भावना का उदय उस समय नहीं हुआ था और ज्ञान-विज्ञान, कला, विद्या, भाषा, मुद्रा, पारिवारिक संस्था, समाज आदि का विकास भी नहीं हो पाया था। उनका एक झुंड कबीले के रूप में निवास करता था और ये लोग अपने वर्तमान से ही पूर्ण तः संतुष्ट थे। उन्हें भविष्य के लिए संचय की चिंता नहीं थी और यह अवस्था वाला समाज सभ्यता के प्रभावों से सर्वथा मुक्त थी। वह समाज ऐसी प्रसन्नता का इच्छुक रहा है, जिसमें सामाजिक नियम और सामाजिक संस्थाओं व सामाजिक मान्यताओं का प्रभाव बिल्कुल नहीं था। यह प्राकृतिक अवस्था ऐसे स्वर्णिम युग सी थी जिसमें नियंत्रणों से मुक्ति व्यक्ति एक भोले एवं निर्दोष पक्षी की तरह प्राकृतिक सौन्दर्य का उपभोग करता था और इस प्रकृति की गोद में मस्ती से स्वच्छंदता पूर्वक विचरण करता रहता था। उसे जंगली कहना आसान था, क्योंकि वह पहाड़ों जंगलों में

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

ही निवास करता था। लेकिन जंगली होते हुए भी वह सज्जन तथा नेक था। वस्तुएं सर्व सुलभ थी और स्पर्धा का नाम न था। इसलिए आंतरिक गृह युद्ध और बाहरी आक्रमण होना नामुमकिन था। मेरे-तेरे का भेद न रखने से उस युग के मनुष्य को बुद्धिहीन भले ही कहे पर वह आज की तरह चरित्रहीन और भ्रष्ट नहीं था और उनके अंदर लालच की भावना नाम मात्र की थी। सादगी उसका गुण था और भोलापन उसका जीवन। प्रकृति के सभी उपहारों का वे गहरा सम्मान करते थे। वे प्रकृति प्रेमी होने के साथ-साथ इसकी रक्षा भी करते रहते थे। उनमें अपने गृह आवास, पेड़ों, पहाड़ों, नदियों, पशु-पक्षियों एवं जीव-जंतुओं के प्रति गहरा लगाव था।

किन्तु यह स्वर्णिम युग धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होता गया। प्राकृतिक दशा की अवस्थाएँ चिरकाल तक स्थर नहीं रह सकी। इस प्राकृतिक अवस्था को विनाश की ओर ले जाने वाली दो ही कारण दिखाई देते है पहला है जनसंख्या की वृद्धि और दूसरा है प्रकृति से तर्क-वितर्क या पैसों की लालच । जनसंख्या की वृद्धि से आर्थिक विकास तेजी से होने लगा, जिससे लोगों में आर्थिक असमानता व सामाजिक असमानता का आभास होने लगा। सरलता और प्राकृतिक प्रसन्नता से प्रारंभिक जीवन का लोप होने लगा। संपत्ति का अभ्युदय हुआ और मनुष्यों में परिवार एवं व्यक्तिगत संपत्ति बनाने की इच्छा उत्पन्न हुई। प्रकृति की क्षत्रछाया में स्वच्छंद घूमने वाले प्रकृतिवासी ने भूमि के हिस्से पर अपना अधिकार सहज व स्नेहवश अस्थाई आवास की तरह जमाना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे वहाँ उनका स्थायी आवास बनने लगा। दूसरे सदस्य जो निस्वार्थ व निश्चल प्रवृत्ति के थे वे इस आधार को निसंकोच मान लिए । वाद-विवाद या प्रतिरोध उनकी प्रकृति से परे था । जनसंख्या की वृद्धि के साथ-साथ यह प्रक्रिया बढ़ती गयी जिससे परिवार और संपत्ति एवं रहने के लिए आवास की जरूरत बढ़ने लगी, जिसके कारण आवश्यकता एवं विषमता का जन्म हुआ।

मनुष्य ने मेरे और तेरे के भाव से सोचना आरंभ किया जिससे अपनत्व की भावना का सूत्रपात हुआ। वही व्यक्ति ही मानवीय समाज का वास्तविक संस्थापक था जिसने भूमि के एक टुकड़े को घेर लेने के बाद यह कहा था कि यह मेरा है और उसी समय एक आधुनिक समाज का निर्माण हुआ था। तब से मनुष्य इस प्रकृति के सुख-शांति से हाथ धोता गया और आर्थिक असमानता के चलते लोगों में अविश्वास व चिड़चिड़ापन होता गया। जिसके

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

कारण जीवन में विषमताएं एवं अशांति का वातावरण तैयार होने लगा और तो और इन मनुष्यों के स्वार्थवश मानवीय विकास के नाम पर प्रकृति के साथ अंधाधुंध छेड़छाड़ किए एवं खोज व आविष्कार के नाम पर पशु-पक्षियों, जीव-जंतुओं आदि के साथ घोर अन्याय किया गया। इन जंतुओं को पकड़कर अपने शोधवश उनके साथ अमानवीय व्यवहार किया गया। व्यक्तिगत आनंद व सुख के चलते इन पक्षियों व जानवरों की मांग बढ़ने से ये शिकारी उन्हें पकड़कर अपने स्वलाभ हेतु इनका बाजारीकरण करने लगे। जिससे ये प्रजातियाँ मनुष्य जाति से एकदम भयभीत होने लगी। इससे हमारे प्राकृतिक सौन्दर्य व शांत वातावरण की क्षति दिन-प्रतिदिन होने लगा। धन की लोलुपता ने तो मानव के स्वार्थ को और ही प्रोत्साहित व प्रेरित किया जिससे उनकी महत्त्वकांक्षा बढ़ती ही गयी । आज की वर्तमान परिस्थिति यह है कि प्रत्येक व्यक्ति पद प्रतिष्ठा की चाहत, धन की अधिक से अधिक लोलुपता, एक-दूसरे के ऊपर अपना अधिकार थोपना, आधिकारिक वर्चस्वपन आदि ने इस मानव मस्तिष्क में इस भांति अपना स्थान बना लिया है कि व्यक्ति अपने को ही भूल गया है कि वास्तव में वह कौन है और इस पृथ्वी पर उसकी अपनी क्या उपयोगिता है? मानव हृदय में जहां प्रेम और भाईचारा की भावना होनी चाहिए थी लेकिन वहाँ नफरत की आग जल रही है। जहां उदारता और सहानुभूति होनी चाहिए थी वहाँ ईर्ष्या व अहंकार अपना वर्चस्व बनाए हुए है। यह मेरा है, यह पराया है, यहाँ मैं हूँ, वहाँ दूसरा है, अपने ही लोग ऐसी भावनाएं मन में पाले हुए है। मनुष्य की इन्हीं करतूतों की वजह से आज हम एक-दूसरे पर विश्वास करना छोड़ दिए है, जिससे आज की मानवता तड़प रही है, चीख रही है, चिल्ला-चिल्लाकर कह रही है कि तू जिस लालच व स्वार्थवश में आकर मानव व प्रकृति की सुंदरता का हनन कर रहा है, यही तुम्हारे जीवन के अस्तित्व को खत्म कर देगी। क्या यही है तुम्हारे वर्तमान मनुष्यता का भविषइसी प्राकृतिक आवरण में रहने वाले इंसान या मनुष्य को हम आज आदिवासी, वनवासी, जनजाति, असभ्य, पिछड़े लोग, नंगे लोग, आदिममानव, आदिमानव, जंगली लोग, आदि विभिन्न नामों से इन्हें पुकारा जाता है। जिसका न कोई धर्म है, संप्रदाय है, न कोई जाति है और न ही वे इस आधुनिक संचार व्यवस्था से उतना ताल्लुक रखते है। वे अब भी कहीं न कहीं अपने कबीले के साथ रह रहे है। इनकी दुर्दशा का मुख्य जिम्मेदार कौन है? यही स्वार्थवादी मानव जिन्होंने अपनी सत्ता स्थापित करने और उन पर शासन करने की चाह, व उनके अकूत धन संपत्ति को लूटने हेतु उनके प्राकृतिक गृह आवास और उनके जीविकोपार्जन के साधनों को तहस-नहस करके उनको पूरी तरह से बेबस व लाचार बना दिया है। आखिर ये लोग किसी का क्या बिगाड़े है, जिसकी वजह से इनके साथ इतना बड़ा छल-कपट किया जा रहा है। इसलिए कि वे

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

मजबूर है, गरीब है, सीधे-साधे, भोले-भाले है, पढ़े-लिखे नहीं है, वे हमारा सम्मान करते है, प्रकृति प्रेमी है, ईमानदार व निस्वार्थी है। हाँ इन्हीं सबका उन्हें उनका पुरस्कार मिला है, और उस पुरस्कार का नाम है जघन्य विश्वासघात एवं धोखा जिसके कारण इनका जीवन सुंदर होने के बावजूद एक अभिशाप बन कर रह गयी है। इनकी बेबसी व लाचारी देखने पर तो लगता है कि इस मानवीय संसार में अब उनके लिए किसी भी प्रकार की संवेदनाएं, सहानुभूति, हृदयात्मक भाव, मानवता आदि नाम की अब कोई चीज नहीं है। इसलिए अब उनके सामने एक ही तरीका बचा है वह है अपने अस्तित्व के लिए आवाज उठाना या ऐसी परिस्थितियों का विरोध करना जो उनके हित में नहीं है। अर्थात आज की वर्तमान परिदृश्य हमें इसी परिस्थिति का आभास करा रही है और यह परिस्थिति किसी से छिपा नहीं है। पर हम सब लोग आज इतना मौन क्यों है? आज हम इतना मजबूर क्यों लग रहे है? हम इतना बेचैन व परेशान क्यों है? आखिर इस चिड़-चिड़ेपन का कारण क्या है? यही प्राकृतिक अवस्था का मूल प्रश्न है।

जब भारत नाम का कोई देश और उड़ीसा नाम का कोई प्रदेश नहीं था, उस समय से भी बहुत पहले से

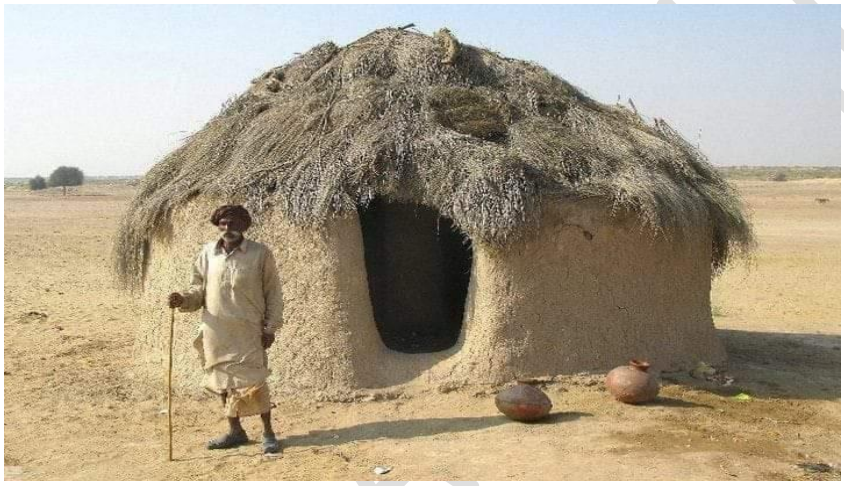

दक्षिणी उड़ीसा की चपटी चोटियों वाली, नीची पहाड़ियाँ डोंगरिया कोंड आदिवासियों का बसेरा रही है। ये पहाड़ियाँ कोंड आदिवासियों की और कोंड आदिवासी इनकी निगहबानी करते थे और इन्हें जीवित देवता मानकर पूजते थे। आज इन पहाड़ियों को बेचा जा रहा है, क्योंकि इनमें बाक्साइट है। कोंड आदिवासियों के लिए यह ऐसे ही है, जैसे देवता की बोली लगा दी गयी हो। अगर इन चपटी चोटियों वाली पहाड़ियों को नष्ट कर दिया गया, तो इन्हें ढँकने वाले जंगल भी नष्ट हो जाएंगे। यही हाल उन नदियों और सोतों का भी होगा, जो इनसे निकलते हैं और नीचे मैदानों को सींचते है। इनके साथ डोंगरिया कोंड भी नष्ट हो जाएंगे और साथ ही वे हजारों-लाखों आदिवासी भी, जो वनों से ढँके है और जो भारत के हृदयस्थल में रहते है, और जिनके निवास-स्थानों पर भी इसी तरह हमला हो रहा है। हमारे भीड़-भाड़ वाले धुंआते शहरों में कुछ लोग कहते है, 'तो क्या हुआ ? किसी न किसी को तो विकास की कीमत चुकानी ही होगी'। कुछ तो यहाँ तक कहते है कि, 'यह तो होना ही है, ये ऐसे लोग है जिनका वक़्त आ चुका है। किसी भी विकसित देश की तरफ़ देखों यूरोप, अमेरिका, आस्ट्रेलिया सभी का एक "अतीत" है। यकीनन है, तो फ़िर भला "हमारा" भी क्यों न हो?

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

आज अगर आदिवासी समुदाय अपने जल, जंगल, जमीन के लिए विरोध प्रदर्शन कर रहा है, तो इसलिए क्योंकि वह सरकार जिसने इन्हें हिंसा और उपेक्षा के अलावा और कुछ नहीं दिया, अब इनकी आख़िरी चीज़ भी छीन लेना चाहती है और वह है उनकी जंगल व जमीन जिसके ऊपर हर प्राणी जीवित व निर्भर है। इस समस्या की जड़ में दशकों का जमा हुआ घोर अन्याय एवं शोषण है। जिससे बचने के लिए हर प्राणी प्रयास करता है, चाहे वह जीव-जंतु हो या कोई और। अपने खाये-पिये अघाये नागरिकों को पूरी तरह से सुरक्षित रखने के लिए सरकार ने इन भोले-भाले लोगों के खिलाफ़ आंतरिक गृहयुद्ध की घोषणा कर दी है।

बातचीत या सुलह समझौता की कोई जरूरत भी महसूस नहीं हो रही है। इसलिए, जहाँ आदिवासियों के लिए अब भी पहाड़ उनका जीता-जागता देवता है, जीवन और आस्था का स्रोत, क्षेत्र के परिवेश और पर्यावरण के स्वास्थ्य का प्रमुख स्तम्भ है तो वही निगमों के लिए वह एक सस्ता सुविधापूर्ण गोदाम है। वह जंगल जो दण्डकारण्य के नाम से जाना जाता था और जो पश्चिम बंगाल, झारखण्ड, उड़ीसा, छत्तीसगढ़ से लेकर आंध्र प्रदेश के कुछ हिस्सों को समेटता हुआ महाराष्ट्र तक फैला है, वह लाखों आदिवासियों का घर है जैसे पशु-पक्षियों एवं जीव-जंतुओं के लिए पेड़-पौधे व प्रकृति।

दुनिया भर के मानवशास्त्री यहाँ आदिवासी समुदाय के बीच आकर प्रत्यक्ष रूप से नातेदारी, पॉटलैच, वयस्कता, विवाह और मृत्यु से जुड़े अनुष्ठानों का अध्ययन करने आते है। जिन्हें ये विचित्र मानव कई वर्षों से लगातार बिना किसी बदलाव के जीते चले आ रहे है? यही पर लेखक मानवशास्त्रियों की आलोचना करते हुए नज़र आते है। इनका मानना है कि यदि सोलह करोड़ पेरुवासियों के विकास और औद्योगिकीकरण की कीमत चुकाने के लिए उन कुछ हजार नंगे, असभ्य, पिछड़े इंडियंस लोगों को अपने सिर कटवाने पड़े, भाषा बदलने पड़े, संस्कृति बदलने पड़े, गुदने मिटाने पड़े, किसी का गुलाम बनना पड़े, ईश्वर बदलना पड़े तो इन सबसे मानवशास्त्रियों को कोई भी फ़र्क नहीं पड़ता है।

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

उनकी चिंता सिर्फ़ पर-संस्कृति को लेकर है कि उनकी मूल संस्कृति बाहरी लोगों के हस्तक्षेप से प्रभावित हो रही है। मानवशास्त्रियों के कार्यों का परिणाम भी अगर वास्तविक रूप से देखा जाए तो उन रबर उत्पादन, जंगल काटने वालों, सेना में भर्ती करने की गरज से आए गोरों और दूसरे मेस्तीसो जैसा ही जनजातियों को मिटा देने वाला होगा। उनका मानना है कि हम साम्राज्यवादी मिशनरी दलों के काम की ही अगली कड़ी है। यह भी कि हम विज्ञान के नाम पर उन इंडियनों को मिटा देने का वैसा ही कुचक्र रचने के दोषी है। जैसा मिशनरी आत्मा का उद्धार के नाम पर चलाते आए है। ये लोग जो काम कर रहे है वह पूरी तरह से अनैतिक है। उन आदिवासी लोगों के रीति-रिवाजों को समझने की आड़ में ये लोग न जाने कौन से कुकर्म कर रहे है। हम उनकी संस्कृति के प्रति हिंसा कर रहे है, कि अपने टेप रिकॉर्डर और बॉल पेन से लैस, हम वे कीड़े है जो फल के अंदर घुसकर उसे सड़ा देते है।

The Asian Thinker

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
. Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

अमेज़न घाटी में जो हो रहा है, वह किसी अपराध से कम नहीं है। खाल और चमड़े के लिए जो भयानक होड़ मची हुई है, उसके चलते चीते, साँप, छिपकली, प्यूमा आदि प्राणी जगत की दर्जनों महत्वपूर्ण प्रजातियाँ लुप्त होने की कगार पर है। चाहे वह किसी भी दृष्टि से देखे, वह जायज़ नहीं है। यक़ीन करों मैं कोई हँसी-खेल नहीं कर रहा। अपने को उनकी जगह पर रखकर देखों चाहे एक पल के लिए ही क्यों न सही? आख़िर वे कहाँ जाएंगे? शताब्दियों से उन्हें अपनी जमीन से खदेड़ा जा रहा है, हर बार वे अंदर, और-और

अंदर धकेले जा रहे है। सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि इतनी विभीषिका की भार के बावजूद वे अपनी अस्तित्व से अभी मिटे नहीं है। वे अब भी बचे हुए है, जिंदा। ये आदिवासी आजतक इसलिए बचे हुए है क्योंकि उन्होने अपनी आदतों, रीति-रिवाजों को प्रकृति की लय के साथ एकात्म कर लिया है। उसके प्रति बिना हिंसा किए, उसमे बिना कोई विचलन पैदा किए, उससे जीवित रहने के लिए जो कम से कम जरुरी है उतना भर लेकर, ताकि पलटकर वह फ़िर उन्हें ही नष्ट न कर डाले। उससे बिल्कुल उलट, जो अब हम सभ्य लोग कर रहे है, उन तत्वों को अमूल-चूल नष्ट करते हुए जिनके बिना हम वैसे ही नष्ट हो जाएंगे जैसे बिना पानी के फूल सूख जाता हैं। भाषावैज्ञानिकों पर एक तीखी टिप्पणी करते हुए कहते है कि भाषा संस्थान में कार्यरत भाषाविद विभिन्न चर्चों से जुड़े हुए थे। अविकसित संस्कृतियों के विषय में जानकारी हासिल करने के पीछे अंतिम लक्ष्य धार्मिक था। बाइबिल का जनजातियों की अपनी भाषा में अनुवाद ताकि वे ईश्वर की आवाज़ को अपनी भाषा के छंद और

उतार-चढ़ाव में सुन सकें। इसी लक्ष्य ने डॉ. पीटर टाउन सेंड को संस्थान की स्थापना करने के लिए प्रेरित किया था। ये भाषाविद और पैगम्बर सबसे ख़तरनाक लोग है। वे घुन की तरह आदिवासी समूहों में प्रवेश कर जाते है और फ़िर उन्हें भीतर से खोखला कर देते है। उनकी आत्मा, उनके विश्वास, उनकी चेतना, उनके वजूद की जड़ों तक घुस जाते है। दूसरे लोग उनकी जगह हथियातें है, उनका शोषण करते है या उन्हें जंगल में और भीतर खदेड़ देते है। तुम्हारे भाषाविद अधिक परिष्कृत है। वे उनको दूसरी तरह से ख़त्म करना चाहते हैं। इन भाषावैज्ञानिकों का मामला कुछ और ही है। उनके पीछे आर्थिक ताकते और बहुत ही कारगार संगठन है जिनके सहारे ये अपने प्रगति के

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

विचार, अपने धर्म, अपने मूल्य, अपनी संस्कृति के बीज़ वहाँ बोने में सफ़ल हो सकते है। आदिवासियों की भाषा सीख रहे है, मैं पूछता हूँ आख़िर किसलिए अमेज़न के इंडियंस को अच्छा पाश्चात्य नागरिक या एक अच्छा आधुनिक मनुष्य या अच्छा पूंजीपति या सुधारवादी गिरजाघरों का अच्छा क्रिश्चियन बनाने के लिए? नहीं, यह कारण नहीं है। दरअसल इन बदमाशों का मक़सद उनकी संस्कृति, उनके देवताओं, उनके संस्थानों को दुनिया के नक़्शे पर से मिटा देना है, उनके स्वप्नों तक को प्रदूषित कर देना है। इसीलिए उन्होने अमेज़न इंडियनों के लिए वे तमाम अनादर सूचक शब्द इजाद किए है जैसे- बर्बर, असभ्य, आदिम, आदमख़ोर आदि। यदि हम उन्हें आदर और सहानुभूति और सरलता एवं मानवता की दृष्टि से देखे तो हम पाएंगे कि बर्बर या पिछड़ा हुआ कहना बिल्कुल गलत है। वे जिस पर्यावरण और परिस्थितियों में रह रहे है उसके लिए उनकी संस्कृति बिल्कुल उपयुक्त है और इसके अलावा उनके पास वस्तुओं का ऐसा गहरा और सूक्ष्म ज्ञान है जिसे हम गवां चुके है। उदाहरण के लिए मनुष्य और प्रकृति का परस्पर संबंध, मनुष्य और देवता का परस्पर संबंध। हम तो यह भी नहीं जानते कि इन सबके बीच कैसा सौहार्द या सुर-संगम हो सकता है क्योंकि हमने उस संबंध को ही सदा के लिए क्षत-विक्षत कर दिया है। उनके लिए ईश्वर हवा, पानी, धरती, जंगल, सूर्य, भोजन की तरह एक जरुरी चीज़ है जिसके बिना जीवन संभव ही नहीं है। वास्तविक रूप से देखा जाए तो वे हमसे कहीं ज्यादा आधुनिक एवं आध्यात्मिक है। दुनिया घोर अव्यवस्था के भँवर में फँस गयी है, इस तरह विश्वास ख़त्म हो गया है, हर व्यक्ति, हर दूसरे का दुश्मन बन गया है। जो भी हो इसी का नाम दुनिया है। यहाँ अच्छा भी हुआ करता है और बुरा भी। यह बुरा ही है कि समझदारी धीरे-धीरे ख़त्म हो रही है। यदि हम समाप्त हो गए तो शायद यह दुनिया ही समाप्त हो जाएगी। ऐसा लगता है कि हमें लगातार चलते रहना होगा। ताकि सूर्य आकाश में बना रहे, नदियां अपनी राह पर, पेड़ जमीन में अपनी जड़े जमाए रहे और जंगल इस धरा पर । किसी परिवार के लिए, बल्कि पूरी जाति के लिए ही सबसे भीषण बात अपने स्वधर्म से अनभिज्ञ बने रहना है। हमारे लिए श्रेयस्कर यही होगा कि हम वही रहें जो हम है। जो मनुष्य अपने स्वधर्म को छोड़कर दूसरे के कर्तव्यों का निर्वाह करने में जुटा रहेगा, वह एक दिन अपनी आत्मा ही गवां बैठेगा।

निष्कर्ष

आदिवासी लोगों की बाईबिल स्कूल में शिक्षा और उनका पादरी बनना, घुमंतू जीवनशैली से अचानक एक जगह बसने का बदलाव, यानि मेरा आशय ईसाईकरण और पश्चिमीकरण की तेज़ रफ़्तार से है। इस तथाकथित

Year-5 Volume: III, July-September, 2023 Issue-19 ISSN: 2582-1296 (Online)
The Asian Thinker
Quarterly Bilingual Peer-Reviewed Journal for Social Sciences and Humanities
Website: www.theasianthinker.com Email: asianthinkerjournal@gmail.com

आधुनिकीकरण से है। सभ्य मानवों ने नदी-नाले, जंगल और खेत सुखा दिए है। जीव-जंतु, पशु-पक्षी आज प्यास के मारे मर रहे है। सच पूछो तो इस दुनिया में घुमंतू आदमी के साथ इससे अधिक बुरा कुछ नहीं घट सकता। तब वो तय नहीं कर पाता कि कहाँ जाए, क्या करें? वो तब यह भी नहीं जानता कि अपना बचाव कैसे करें? वो ख़ुद से यही पूछते रह जाते है कि मैं क्या करूँ? मुझे क्या करना चाहिए? तब सारे शैतानों और दुष्ट आत्माओं की फौज उसके जीवन में घुस आती है और उससे खेलती है। शायद वैसे ही जैसे बच्चे मेढकों के साथ खेलते है, और फ़िर उन्हें कूदने पर मज़बूर करते है। वे जैसे भी है उसने उन्हे प्रकृति के साथ सैकड़ों वर्षों से तालमेल बनाए रखने में मदद की है। हालांकि उनके बहुत सारे विश्वास हमारी समझ के बाहर है और उनके कई रीति-रिवाज़ तो हमारे भीतर आक्रोश भी पैदा करते है फिर भी हमें उन्हे मार डालने का कोई अधिकार नहीं है। क्या हमारी कारें, बंदूकें, जहाज़ और कोकाकोला हमें यह अधिकार देते है कि हम उन्हे ख़त्म कर डाले क्योंकि उनके पास ये तमाम वस्तुएं नहीं है?

संदर्भ ग्रंथ-सूची *(Bibliography)*

- सांकृत्यायन, आर. (1942). *वोल्गा से गंगा*. इलाहाबाद : किताब महल.
- ट्म्टा, बी. आर. (1994). *अंडमान और निकोबार द्वीप समूह*. इंडिया : नेशनल बुक ट्रस्ट.
- बसु, बी. (2000). *मानव की कहानी*. नई दिल्ली : राष्ट्रीय पुस्तक न्यास. भारत.
- श्रीनिवास, एम. एन. (2000). *भारत के गाँव*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- हसनैन, एन. (2001). *जनजातीय भारत*. नई दिल्ली : जवाहर पब्लिशर्सएण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, छठा संस्करण.
- वैद्य, एन. के. (2003). *जनजातीय विकास : मिथक एवं यथार्थ*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
- कमलेश्वर (2006). *कितने पाकिस्तान*. दिल्ली : राजपाल प्रकाशन.
- सांकृत्यायन, आर. (2008). *मानव-समाज*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- ल्योसा, एम. वी. (2011). *किस्सागो*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन. हिंदी संस्करण.
- राय, ए. (2012). *आहत देश. नई दिल्ली* : राजकमल प्रकाशन.
- पंडिता, आर. (2012). *सलाम बस्तर*. नई दिल्ली : ट्रानक्यूबर प्रेस.
- राय, ए. (2012). *कठघरे में लोकतंत्र*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- मीना, एच. (2012). *आदिवासी दुनिया*. इंडिया : नेशनल बुक ट्रस्ट.
- रामानुजन, ए. के. (2012). *तीन सौ रामायण*. नई दिल्ली : वाणी प्रकाशन.
- नारायण, बी. (2014). *हिंदुत्व का मोहिनी मंत्र*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- भार्गव, एन. (2014). *वैश्वीकरण : समाजशास्त्रीय परिप्रेक्ष्य*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
- मीणा, के. पी. (2014). *आदिवासी समाज, साहित्य और राजनीति*. दिल्ली : अनुज्ञा बुक्स.

The Asian Thinker

- हबीब, आइ. (2015). *मनुष्य और पर्यावरण : भारत का पारिस्थितिक इतिहास*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- सिंह, बी. पी. & सिंह, आर. एस. पी. (2016). *उत्तर-आधुनिकतावाद : राजनीति, समाज एवं संस्कृति*. जयपुर : रावत पब्लिकेशन्स.
- देवी, एम. (2016). *जंगल के दावेदार*. नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन.
- बेनीवाल, ए. (2016). *आज़ादी मेरा ब्रांड*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- सिंह, एस. (2016). *पिछले पन्ने की औरतें*. नई दिल्ली : सामयिक प्रकाशन.
- तुमराम, वी. (2016). *आदिवासी और उनका निसर्ग धर्म*. वर्धा : सुधीर प्रकाशन.
- श्रीनिवास, एम. एन. (2016). *आधुनिक भारत में जाति*. नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन.
- पठारी, जी. टी. (2017). *येरमिहतना एक महान गोटुल*. रायपुर : पुनेम शोध संगत.
- पंकज, ए. के. (संपादित). (2017). *प्राथमिक आदिवासी विमर्श*. राँची : प्यारा केरकेट्टा फाउंडेशन.
- दिनकर, आर. एस. (2017). *संस्कृति के चार अध्याय*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- रणेन्द्र (2017). *ग्लोबल गाँव का देवता*. नई दिल्ली : भारतीय ज्ञानपीठ.
- हरारी, यू. एन. (2018). *सेपियंस मानव-जाति का संक्षिप्त इतिहास*. नई दिल्ली : मंजुल पब्लिशिंग हाउस.
- रणजीत (2018). *सांप्रदायिकता का ज़हर*. इलाहाबाद : लोकभारती प्रकाशन.
- गाडगिल, एम. & गुहा, आर. (2018). *यह दरकती जमीन : भारत का पारिस्थितिक इतिहास*. नई दिल्ली : आक्स्फ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस.
- सिंक्रेटिक, एस. के. (2019). *बनकिस्सा : स्टोरीज ऑफ किंगफिशर*. दिल्ली : हिन्द युग्म ब्लू प्रकाशन.
- डार्विन, सी. (2019). *द ओरिजिन ऑफ स्पेशीज*. नई दिल्ली : फिंगरप्रिंट क्लासिक प्रकाशन.
- छायाचित्र- स्रोत गूगल

The Asian Thinker